आसन के उद्धेश् य-

अष्टांग येाग में तीसरा अंग आसन है । इनकी आवश्यकता योग साधना के लिए महत्वपूर्ण है। आसन के अभ्यास से स्थिरता, स्वास्थ्य तथा शरीर में हलकापन आता है। आसनों का पहला उद्धेश्य हमें शारीरिक और मानसिक कष्टों से मुक्ति दिलाना है। आसन शरीर के जोड़ों को लचीला भी बनाते हैं। वे शरीर की मॉसपेशियों में खिंचाव उत्पन्न कर उन्हें स्वस्थ बनाते हैं तथा शरीर से विषाक्त तत्वों को बारह निकाल में सहायता करते हैं। आसन तंत्रिका-तंत्र के कार्यकलापों में सामंजस्य उत्पन्नकरते हैं और शरीर के आंतरीक अंगों की कार्यक्षमता को बढ़ाते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे शरीर स्वस्थ बन जाता है।

आसन का स्वरूप- स्थिर और सुखकर शारीरिक स्थिति मानसिक संतुलन लाती है और मन की चंचलता को रोकती है। आसनो की प्रारंभिक स्थिति में अनेक प्रकारान्तरों के द्वारा अपने शरीर को अन्तिम स्थिति के अभ्यास के लिए तैयार किया जाता है। महर्षि घेरण्ड, घेरण्ड संहिता में आसनों के सन्दर्भ में बताते हैं कि इस संसार में जितने जीव-जंतु हैं, उनके शरीर की जो सामान्य स्थिति है, उस भंगिमा का अनुसरण करना आसन कहलाता है। भगवान् शिव ने चैरासी लाख आसनों का वर्णन किया है। उनमें से चैरासी विशिष्ट आसन हैं ओर चैरासी आसनों में से बत्तीस आसन मृत्यु लोक के लिए आवश्यक माने गये हैं।
महर्षि पतंजलि ने आसन शरीर को स्थिर और सुखदायी रखने की तकनीक के रूप में बताया है।

आसन का अर्थ-

आसन शब्द संस्कृत भाषा के 'अस' धातु से बना है जिसके दो अर्थ हैं- पहला है 'बैठने का स्थान' तथा दूसरा 'शारीरिक अवस्था'।
1.बैठने का स्थान 2.शारीरिक अवस्था
बैठने का स्थान का अर्थ है जिस पर बैठते हैं जैसे-मृगछाल, कुश, चटाई, दरी आदि का आसन। आसन के दूसरे अर्थ से तात्पर्य है शरीर, मन तथा आत्मा की सुखद संयुक्त अवस्था या शरीर, मन तथा आत्मा एक साथ व स्थिर हो जाती है और उससे जो सुख की अनुभूति होती है वह स्थिति आसन कहलाती है।
आसन अर्थात् जब हम किसी स्थिर आसन में बैठेंगे तभी योग साधनाएं कर सकते है। महर्षि पतंजलि ने अपने योग सूत्रों में किसी विशेष आसन का वर्णन नहीं किया है केवल आसन की परिभाषा बताई है जो इस प्रकार है-

स्थिरंसुखमासनम्।। पातंजल योग सूत्र 2/46

जो स्थिर और सुखदायी हो वह, आसन है।हमें किसी भी प्रकार की साधना करने के लिए आसन के अभ्यास की आवश्यकता हेाती हैं । आसन मे स्थिरता व सुख होने पर ही हम प्राणायाम आदि क्रिया सम्पन्न कर सकते हैं। अतः स्वाभाविक व प्राथमिक आवश्यकता साधना के लिए "आसन" की होती है। आसन से संबंधित विभिन्न व्याख्याकारों ने जो व्याख्या की है वह इस प्रकार है- तेजबिंदु उपनिषद् में आसनों को इस प्रकार परिभाषित किया गया है-

सुखनैव भवेत् यस्मिन् जस्त्रं ब्रह्मचिंतनम्।

जिस स्थिति में बैठकर सुखपूर्वक निरंतर परमब्रह्म का चिंतन किया जा सके, उसे ही आसन समझना चाहिए।
श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने आसनों को इस प्रकार बताया है-

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।। श्रीमद्भगवद्गीता 6/13

कमर से गले तक का भाग, सिर और गले को सीधे अचल धारण करके तथा दिशाओं को न देख केवल अपनी नासिका के अग्र भाग को देखते हुए स्थिर होकर बैठना आसन है।

व्यास भाष्य के अनुसार-
पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन, दण्डासन, सोपाश्रय, पर्यङ्क्, क्रौन्चनिषदन, हस्तिनिषदन, उष्ट्रनिषदन, समसंस्थान- ये सब स्थिरसुख अर्थात् यथासुख होने से आसन कहे जाते हैं।

विज्ञानभिक्षु के अनुसार –
जितनी भी जीव जातियां है, उनके बैठने के जो आकार विशेष हैं, वे सब आसन कहलाते हैं।

स्वामी विवेकानंद के अनुसार -
आसन के स्थिर होने का तात्पर्य है, शरीर के अस्तित्व का बिल्कुल भान तक न होना।

आसनों के सबंध में आचार्य श्री राम शर्मा कहते हैं कि "आसनों का गुप्त आध्यात्मिक महत्व है, इन क्रियाओं से सूर्य चक्र, मणिपुर चक्र, अनाह्त चक्र आदि सूक्ष्म ग्रंथियों का जागरण होता है और कई मानसिक शक्तियों का असाधारण रूप से विकास होने लगता है।" इससे स्पष्ट है कि शारीरिक लाभ तो स्वाभाविक है, लेकिन आध्यात्मिक, मानसिक लाभ भी साथ-साथ मिलते हैं। दृ

आसन की सिद्धी-

महर्षि पतंजलि ने आसन की सिद्धी के सन्दर्भ में स्पष्ट करते हुए कहा है कि -

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ।। योग सूत्र 2/47

प्रयत्न की शिथिलता से तथा अनंत परमात्मा में मन लगाने से सिद्ध होता है। आसन की सिद्धी से संबंधित विभिन्न व्याख्याकारों ने जो व्याख्या की है वह इस प्रकार है-

व्यास भाष्य के अनुसार - प्रयत्नोपरम् से आसन सिद्धि होती है।

स्वामी हरिहरानंद के अनुसार -
आसन सिद्धि अर्थात् शरीर की सम्यक् स्थिरता तथा सुखावस्था प्रयत्नशैथिल्य और अनंत समापत्ति द्वारा होती है।

स्वामी विवेकानंद के अनुसार- अनंत के चिंतन द्वारा आसन स्थिर हो सकता है।स्पष्ट है कि आसन तभी सिद्ध कहलाता है जब स्थिरता व प्रयत्न की शिथिलता अर्थात् अभाव होगा क्योंकि प्रयत्न करने पर स्थिर सुख का लाभ प्राप्त नही हो सकता है न हीं स्थिरता के भाव प्राप्त हो सकते है। अतः जैसे-जैसे हम शरीर को स्थिर रखने का प्रयास करेंगे वैसे-वैसे हम शरीर भाव से ऊँचे उठेंगे। यह अनंत के चिंतन द्वारा ही संभव है।

आसन का परिणाम-
जब आसन के अभ्यास से स्थिरता का भाव आ जाएगा वो हमें किसी भी प्रकार का दुःख द्वन्द्व आदि हमें विचलित नही कर पायेंगे। इसे ही महर्षि पतंजलि ने आसन के फल के रूप में स्पष्ट करते हुए कहा है कि

ततो द्वन्द्वानभिघातः ।। पातंतज योग सूत्र 2/48

उस आसन की सिद्धि से जाड़ा-गर्मी आदि द्वन्द्वों का आघात नहीं लगता। आसन के फल से संबंधित विभिन्न व्याख्याकारों ने जो व्याख्या की है वह इस प्रकार है-

व्यास भाष्य-आसन जय के कारण शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वो द्वारा (साधक) अभिभूत नहीं होता।

स्वामी हरिहरानंद-
"आसनस्थैर्य के कारण शरीर में शून्यता आ जाती है"स्पष्ट है कि जब हम आसन सिद्ध कर लेंगे तो हमें शुभ-अशुभ सुख-दुख, गर्मी-ठण्डी आदि भाव नही सतायेंगे। हम बोधशून्य हो जाते हैं। क्योंकि पीड़ा एक चंचलता ही है और आसन सिद्धि तो चंचलता की समाप्ति होने पर ही हो सकती है अतः हममें यह चंचलता रूपी पीड़ा का भान नही होता है हम कसी भी स्थिति मे सुख व शांत होते हैं।

आसन का महत्व-
आसनों का मुख्य उद्देश्य शारीरिक तथा मानसिक कष्टों से मुक्ति दिलाना है। आसन से शरीर के जोड़ लचीले बनते हैं। इनसे शरीर की माँसपेशियों में खिंचाव उत्पन्न होता है पातंजल योगसूत्र जिससे वह स्वस्थ होती हैं तथा शरीर के विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालने की क्रिया संपन्न होती है। आसन से शरीर के आंतरिक अंगों की मालिश होती है जिससे उनकी कार्यक्षमता बढ़ती है। आसनों का सीधा प्रभाव शरीर की नस-नाड़ियों के अतिरिक्त सुक्ष्म कशेरुकाओं पर भी पड़ता है। आसनों के अभ्यास से आकुंचन और प्रकुंचन द्वारा शरीर के विकार हट जाते हैं। आसन से शारीरिक संतुलन के साथ-साथ भावनात्मक संतुलन की प्राप्ति होती है।